प्रवचन नं.-५ गाथा-१ ता.११-६-७८ रविवार जेठ सुद-५ सं.२५०४ श्रुतपंचमी

यह एक समयसार सिद्धांत (ग्रंथ) है। समयसार अर्थात शुद्धात्मा का कथन। अंदर भगवान आत्मा देह से भिन्न... देह तो जड़ है, अंदर पुण्य पाप के भाव होते हैं, शुभ अशुभ विकल्पराग भी विकार है, उससे रहित अंदर पूरण शुद्ध चैतन्यघन, अनादि-अनंत, उत्पत्ती और नाश बिना की जो चीज है, आनंदघन उसे यहाँ समयसार अथवा आत्मा कहते हैं, ऐसी आत्मा की इसमें व्याख्या है।

प्रथम यहाँ है, मूल गाथा सूत्रकार, एक एक गाथा है ना। इसके ऊपर कुंदकुंदाचार्य ग्रंथ के प्रारंभ में मांगलिक पूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं। आज श्रुतपंचमी का दिन है और आज शुरूआत उन्नीसवीं बार शुरूआत होती है, समयसार उन्नीसवीं बार, अठारहबार तो प्रत्येक शब्द का अर्थ करके अठारहबार तो स्वाध्याय हो गया है। तैंतालीसवां वर्ष चलता है यहाँ (सोनगढ़ में) अठारहबार तो हो गया यह उन्नीसवींबार है। क्या कहते हैं सूत्र अवतार।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।१।।

(हरिगीत)

ध्रुव अचल अरु अनुपम गति, पाये हुए सब सिद्धको।
मैं वंदु श्रुतकेवलिकथित, कहूँ समयप्राभृतको अहो।।१।।

गाथार्थ लेते हैं। `आचार्य कहते हैं' संत हैं मुनि हैं। अतीन्द्रिय आनंद के अनुभवी हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद से भरा हुआ सच्चिदानंद प्रभु है। अनादि से उसकी उसे (अज्ञानी को) खबर नहीं। `है ?' `सत्' `चित्' `आनंद'। है, ज्ञान, आनंद - ऐसा इसका स्वरूप है, उसके स्थाई ऐसे स्वरूप को यहाँ आचार्य कहते हैं। मैं अनुभव करता हूँ, और अनुभव करके जगत के प्राणियों के लिये और अपने हित के लिये और पूर्ण परमात्मा जो हुये उनको मैं वंदन करके शुरूआत करता हूँ। पूरण परमात्मा आत्मदशा को प्राप्त हुये, आनंद प्रभु पूर्ण आनंद स्वरूप है, उसका स्वभाव ही आनंद है। आहाहा ! इस अतीन्द्रिय आनंद स्वभाव को जिन्होंने वर्तमान दशा में प्राप्त किया, उन्हें परमात्मा कहा जाता है, उन्हें सिद्ध कहा जाता है। इन सिद्धों को नमस्कार करके मैं यह कहूँगा - ऐसा कहते हैं।

कहते हैं ना देखो ! मैं ध्रुव, ध्रुव... परमात्मा पद है वह तो ध्रुव है, पाये हुये की बात है, सिद्ध सिद्ध... जैसे सकरकंद है ना सकरकंद, उस सकरकंद के ऊपर का लाल छिलका है, वह ना देखो तो वह सकरकंद है, सकरकंद अर्थात शक्कर की मिठाश का पिण्ड, फिर भाषा तो शक्करिया कि शक्कर जैसा (यह तो) भाषा हो गई है। मूल में तो लाल जो छाल है लाल, वह न देखो तो यह सकरकंद है, शक्कर की मिठाश का दल है। सादी भाषा है। यह तो दृष्टांत है। इसीप्रकार यह आत्मा... कठिन बात है। यह आत्मा अंदर जो चीज है, उसमें पुण्य पाप के विकल्प जो राग उठता है, वह तो लाल छिलके की तरह हैं, यह शरीर तो जड़ है वह तो कहीं आत्मा में नहीं। वह तो मिट्टी जड़ धूल है। परंतु अंदर जो दया-दान-व्रत-भक्ति के भाव वह पुण्य राग है। हिंसा, झूठ, विषय, भोग, वासना, काम, क्रोध यह पाप राग है। यह पुण्य और पाप के भाव वह लाल छिलके जैसा सकरकंद के ऊपर है। उन भावों के पीछे देखो तो आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का कंद है। आहाहाहा !

प्रभु ! परंतु स्वीकार करना (कठिन है) कभी अभ्यास नहीं किया, इस दुनियाँ के अभ्यास के सामने बाहर के अभ्यास बढ़ाये, यह डाक्टर के, एल. एल. बी. के, एम. ए. यह बड़ी बड़ी उपाधियाँ लम्बी की उन्होंने, परंतु यह मैं हूँ उसकी खबर नहीं मिली। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं - जो कोई अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप प्रभु है, ऊपर के लाल छिलके की भांति पुण्य और पाप के भाव विकार और विकृत है, उन्हें जिसने दूर करके, जिसने पूरण अतीन्द्रिय आनंद का कंद प्रभु है, जैसे सकरकंद शक्कर की मिठाश का पिण्ड है, उसे छिलका निकाल कर खुला किया, उसी प्रकार जिसने

पूरण अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु पूरण सत्ता होनेवाली चीज, अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप, उसका भान करके जिसने विकार का नाश किया, और पूर्णानंद की जिसे प्राप्ति हुई, उसे यहाँ सिद्ध परमात्मा परमेश्वर कहा जाता है। वह परमेश्वर को नमस्कार करते हैं। आहाहा ! तो इसमें आस्थापना तो इतना आया। एक तो पूर्ण आनंद को प्राप्त अनंत परमात्मा हो गये। क्योंकि हरेक जीव भी पुरुषार्थ करे तो थोड़े समय में पूर्णानंद (को) प्राप्त हो। तब (अभीतक) अनंत काल हुआ उसमें अनंत हो गये हैं। सिद्धपद को, परमात्मपद को पाये हुये अनंत आत्मा हो गये हैं।

इसलिये यहाँ कहते हैं सभी सिद्धों को, अनंत अनंत सिद्ध जो हुये। आहाहा ! प्रतीति में कितनी बात है उन्हें ? कि अनंत आत्मायें और वे अनंत आत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप हुए। वह अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप दशा को प्राप्त हुये और मुक्त हुये अर्थात दुःख और विकार से मुक्त हुये और उसकी जगह अतीन्द्रिय आनंदरूप पूर्णता की प्राप्ति की, उन्हें यहाँ सिद्ध और परमात्मा कहा जाता है। आहाहा ! वह उसे नमस्कार करते हैं, वह ध्रुव हुए हैं, है ? परमात्मदशा हुयी वह अब ध्रुव है, अब उसे गतियों में भटकना नहीं। जैसे चना कच्चा हो तब कषायला लगे और बोनेपर उगे परंतु सिकने से कषायलापन जाता, मिठाश आती और बोनेपर उगे नहीं चना। ऐसे भगवान आत्मा पुण्य और पाप और शरीर मेरे - ऐसा माने वहाँ तक अज्ञान से उसे कषायला अर्थात दुःख का वेदन है। उस दृष्टांत से सिद्ध (करते है) परंतु जब उसे सेकते हैं तब जैसे चने में मिठाश अंदर थी, जो थी वह आती है, वह कहीं बाहर से आती नहीं, इसीप्रकार आत्मा में राग और द्वेष और अज्ञान, स्वरूप के भान द्वारा नाश करते हैं तब अज्ञान जल जाता है और इसके स्थान में अतीन्द्रिय आनंद और ज्ञान प्राप्त होता है। जो प्राप्ति हुयी वह वैसी की वैसी रहती है इसलिये उसे ध्रुव कहते हैं। इस संसार में तो एक भवमें से दूसरा भव ऐसी लाइन लगी है कतार ! यहाँ जन्मे और मरे, जन्मे और मरे, जन्मे और मरे, आहाहा ! लाइन लगी है अनंत भवों की।

परंतु जिसने आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप का भान करके, जिसने राग, द्वेष और अज्ञान का नाश किया, उसकी दशा ध्रुव हो गई ! अब बदलेगी नहीं, उसे अब गति नहीं, भव नहीं और ***जो सिद्ध हुये उन्हें फिर से संसार में आना नहीं इसलिये उन्हें ध्रुव कहा, पर्याय को ध्रुव हो ! वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव है, परंतु*** (***पर्याय का अर्थ ?***) पर्याय अर्थात अवस्था पर्याय अर्थात हालत, पर्याय अर्थात दशा, पर्याय अर्थात वर्तमान स्थिति। जैसे सोना है वह सोना कायम है इस अपेक्षा सोने को द्रव्य कहते है, और सोने से पीलापन और चिकनापन पर है वह भी कायम

(स्थाई) है इसलिये गुण कहते हैं, परंतु सोने में कुण्डल, कड़ा, अंगूठी दशायें होती है, उसे अवस्था कहते हैं। आहाहा ! कुण्डल, कड़ा, अंगूठी अवस्थायें, ऐसे भगवान आत्मा, जैसे सोना वस्तु अपेक्षा अनादि है वैसे ही आत्मा अनादि है। जैसे सोने में पीलापना चिकनापना आदि है वह भी अनादि के है, इसीप्रकार आत्मा में आनंद और ज्ञानादि स्वभाव वह अनादि के हैं परंतु उसकी अवस्था में जैसे सोना में कड़ा अंगूठी आदि होते हैं, उसीप्रकार इसकी अवस्था में पुण्य और पाप, राग और द्वेष कर रहा है और अज्ञान की दशा से चार गति में भ्रमण कर रहा और परिभ्रमण कर रहा है। आहा ! इस दशा को टाले और टालकर इस दशा में निर्मल जो आनंद स्वरूप है वह दशा प्रगट करे उस दशा को यहाँ ध्रुव कहते हैं। वह बाद में पलटे नहीं। यहाँ की गति तो पलटे एकमें से दूसरी मनुष्य मर कर कीड़ा हो, कीड़ा मर कर कौआ होता है। आहाहा !

क्योंकि वस्तु तो अनादि है और परिभ्रमण के दुःख और उसका कारण जो विकार का सेवन कर रहा है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप कर रहा है इसलिये वह परिभ्रमण में तो पड़ा ही है। एक अवतारमें से दूसरा अवतार, लाईन लगी ही है जन्म की। यह जन्म मरण जिसके छूट गये, आहाहा ! और जिसका स्वरूप अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद से भरा हुआ था वह जिसने वर्तमान दशा में प्राप्त किया उन परमात्मा को यहाँ ध्रुव कहते हैं। यह दशा अब उन्हें रहनेवाली है, बदलनेवाली नहीं, इसलिये ध्रुव कहते हैं। न्याय समझ में आता है ना ? बात तो लौजिक से है परंतु अब विषय पूरा अन्य है। जगत के धंधे से विषय ही अन्य है आहाहा !

ध्रुव, `अचल' यह पूरण दशा को पाये, वह वहाँ से अब आयें - ऐसा नहीं, इसलिये अचल है। अनुपम पूर्णपद को पाये उन्हें उपमा नहीं होती। अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप ***प्रभु स्वभाव जिसका होता वह दुःखरूप नहीं होता, विकृत नहीं होता, विपरीत नहीं होता,*** उसका अंतर स्वभाव भगवान आत्मा का अतीन्द्रिय आनंद, अतीन्द्रियज्ञान, अतीन्द्रिय शांति उसका स्वभाव है। यह अधूरा नहीं, विपरीत भी नहीं, उस वस्तु के मूल स्वभाव को आवरण भी नहीं। अरे ! ऐसी बातें हैं।

वह शक्ति जहाँ प्रगटी... सोना में जैसे सोलहवान प्रगट किये और मैल तथा अन्य धातु निकल गई, वैसे भगवान आत्मामें से पुण्य और पाप का कथिर अर्थात् मैल निकल गया, और अवस्था में पूर्णानंद का नाथ प्रगट हुआ उसे यहाँ अचल और अनुपम गति पाये हुये कहा जाता है। समझ में आया कुछ ? `कुछ' अर्थात किस तरह से कहा जाता है उसका नाम कुछ, समझ में आता है। वह तो समझ जायें तो समझ जायें, परंतु `कुछ' अर्थात किस रीति से कहा जाता है (इसलिए कुछ

कहते हैं)। `समजाय छे कांई' इसका अर्थ यह है। आहाहाहा !

कहते हैं यह ध्रुव, अचल और अनुपम तीन विशेषणों से युक्त गति को प्राप्त हुये परमात्मा, सिद्ध गति को प्राप्त हुये। परमानंद दशा को प्राप्त हुये, संसार अवस्था जिनकी नाश हो गयी। यह परिभ्रमण रूपी अवतार जिसके अभाव हो गये। कांतिभाई ! णमो सिद्धाणम्, उनकी बात चलती है, णमो सिद्धाणम् कोई पक्ष नहीं वस्तु का स्वरूप है। आहाहा !

ऐसी `गति को प्राप्त हुये - ऐसे सर्व सिद्धों को'... अनंत परमात्मा हुये, कारण कि अनंत अनंत काल हुआ, उस अनंत काल में, अनंत संत आदि हुये, तो उन्होंने आत्मा की साधना करके, आत्मा के आनंद का, अल्पकाल में वह मुक्ति को प्राप्त करेंगें, उन्हें अनंत काल मुक्ति जाने में चाहिए नहीं। आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति, जैसे दोजमें से पूनम होने में तेरह दिन का अंतर रहता है, अनंत काल का अंतर नहीं रहे। दूज से पूनम, इसीप्रकार आत्मा का अनुभव, राग से भिन्न चैतन्य के आनंदके अनुभव का बीज पका जहाँ, दूज हुयी दूज, उसे पूर्ण प्राप्ति के लिये ज्यादा समय न लगे अब ! दूज उगी वह तेरहवें दिन पूनम हुयी, पूनम अर्थात पूरण, अमावास्या यानी आधा मास, आधा महीना। ऐसे पूरण दशा को प्राप्त होने में उसे समय नहीं लगेगा। इसलिये यहाँ कहते हैं, ऐसे अनंत सिद्ध हुये। आहाहा ! आत्मा की दशा को प्राप्त करते करते अनंत हो गये हैं।

जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ... सम्यग्दर्शन, सत्यदर्शन, पूर्णानंद का नाथ सत्य है उसका दर्शन हो गया, अनुभव हुआ, मैं तो शुद्ध हूँ, यह पुण्य पाप के भाव वह तो मैल, अशुद्ध और दुःख रूप है। - ऐसा जहाँ भान हुआ, अब उसे पूर्ण प्राप्ति में अनंत समय नहीं चाहिए, अल्पकाल में यह पूरण की प्राप्ति करेगा, तब ऐसे अनंत सिद्ध हो गये। अनंत काल के प्रवाह में अनंत परमात्मदशा को प्राप्त हुये, इसलिये सर्व सिद्ध शब्द प्रयोग किया है, सभी परमात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! है ना ? नमस्कार करके... अहो ! अहो ! भव्य जीवो- ऐसा कहते हैं आचार्य संत, श्रुतकेवली भणितं, श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ, सर्वज्ञपरमात्मा के द्वारा कहा हुआ और श्रुतकेवली अर्थात भावश्रुत का ज्ञान जिसे हो गया उनके द्वारा कहा हुआ, इस समयसार नाम के प्राभृत को कहूँगा। इस शास्त्र को मैं कहूँगा, जगत के हित के लिये और हमें इस जाति का विकल्प उठा इसलिये मैं कहूँगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! कठिन काम है, एक एक शब्द कठिन है। (समझने में।)

अंतर की इस चीज (आत्मवस्तु) का कभी अभ्यास नहीं, सच्चिदानंद प्रभु वस्तु है, वस्तु है, तत्त्व है, तो वस्तु में बसे हुये गुण हैं उसे वस्तु कहते हैं। वस्तु जिसमें

अंदर अनंत शक्ति बसी हुयी है, इसलिये वस्तु कहते हैं। इसप्रकार भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें अनंती अनंती पवित्र शक्तियाँ बसी हुयी हैं। उन शक्तियों की जिन्होंने दशा प्रगट की और अज्ञान का नाश करके परिभ्रमण बंद किया, उन्हें यहाँ परमात्मा कहा जाता है। ऐसे अनंत परमात्मा को नमस्कार करते हैं। आहाहा ! है ? - ऐसा कहकर अब मैं इस शास्त्र को कहूँगा। अब टीका !

टीका :- संस्कृत में पहला शब्द `अथ' है, संस्कृत है पहले `अथ', `अथ' क्यों कहा है ? इस शास्त्रकी ये ही शुरूआत है, यह श्रुत पंचमी का दिन है इस दिन श्रुत की रचना हुयी थी वह श्रुतपांचम, दोहजार वर्ष हुए अंकलेश्वर में इस श्रुत की रचना हुयी थी, और आज इस समयसार की शुरूआत होती है उन्नीसवी बार सभा के अंदर, यहाँ कहते हैं `अथ' वह मंगल के लिये है, अर्थात क्या ? `अथ' अब कहता हूँ, ***अर्थात अनादि का जो संसार है उसका नाश होता है और `अथ' अब आनंद की नई शुरूआत होती है।*** अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप भगवान आत्मा वह अनादि से दुःख को वेद रहा है। राग और द्वेष, पुण्य और पापके भावोंको वेद रहा है। वह तो दुःख है उसमें अतीन्द्रिय आनंद का अंश नहीं।

अब यहाँ कहते हैं कि मांगलिक के लिये `अथ' शब्द लिख दिया है `अथ' का अर्थ मांगलिक किया, प्रारंभ हो गया। आत्मा के अनुभवन की शुरूआत के लिये `अथ' शब्द मंगल के लिये प्रयोग किया है। आहाहाहा ! बहुत शर्तोंवाला शब्द है बापू ! मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहाहा ! है ? - ऐसा कहते हैं कि अब मार्ग की शुरूआत हो गई है। प्रभु ! आनंद का नाथ अंदर सच्चिदानंद प्रभु ! चैतन्य जलहल ज्योति जिसके प्रकाश की सत्ता में जगत जानने में आता है। जिसके प्रकाशकी सत्तामें जगत जानेमें आता है। वह जाननेवाला जागा है इसलिये उसे `अथ' नाम मंगलिक कहा जाता है। आहाहा ! है ? एक `अथ' शब्द का इतना अर्थ है।

`अथ' मंगल के लिये... मंगल का अर्थ यह है की मम + गल, मंग + ल, ऐसे दो अक्षर हैं। `मंग' अर्थात पवित्रता और `ल' अर्थात लाति प्राप्ति। भगवान, अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु स्वभाव वह पवित्र है, उसे `मंग' कहते हैं और `ल' उसकी दशा (पर्याय) में प्राप्ति करे उसे मंगल कहते हैं। अरे ! दुनियाँ को तो पांच पचास लाख मिलें तो मंगलिक कहते हैं। वास्तु (मकान का उद्घाटन) करे और पांच पचास हजार खर्च करे उसे मंगलिक कहते हैं। कुटुम्बियों को एकत्र करके लापशी भोजन आदि कराये। लड़के की शादी करे और पांच दश हजार खर्च करे और मंगलिक कहे, यह सभी अमांगलिक है, नाशवान है। यह मांगलिक नहीं, मंगल तो उसे कहते हैं जिससे आत्मामें पवित्रता प्रगट हो, उसे मंगलिक कहते हैं। प्रभु स्वयं आनंद स्वरूप

है, सच्चिदानंद उसका स्वभाव है। उसमें से सत् आनंदमें से अतीन्द्रिय आनंद की पवित्र `मंग' नाम पवित्रता और `ल' नाम प्राप्ति। (जो) ऐसी पवित्रता की प्राप्ति कराये, उस भाव को मांगलिक कहते हैं। डॉकटर ? हरेक शब्द में फर्क है। आहाहा ! अथवा मं और गल पहले `मंग' और `ल' लिया। उसमें मंग पवित्र प्रभु, शुद्ध स्वरूप चैतन्यघन उसकी पवित्रता जिसने अंतरमुर्ख होकर, बर्हिमुख की दृष्टि छोड़कर, अंर्तमुख होकर जिसने आनंद को प्रगट किया, उसने पवित्रता प्रगट की इसलिये इसे मंगलिक कहते हैं। मं.....ग.....ल..... यह तो प्रत्यय हैं संस्कृत। दूसरा अर्थ `मम्' और `गल'। वहाँ `मंग' और `ल' था यहा `मम्' और `गल',। आत्मा आनंद स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन है, उसे वे पुण्य-पाप और शरीर हमारा- ऐसा जो `मम्' नाम अहंकार है - ऐसा जो मिथ्यात्व भाव है उसे `गल' नाम गलाये उसे मंगलीक कहा जाता है।

उन पुस्तकों में नहीं आया होगा डॉक्टरों के अभ्यास (पढ़ाई) में कहीं ? आहाहाहा ! पूरा मार्ग दूसरी जाति का है। प्रभु क्या कहें ? आहाहा ! अंतर की चीज, जन्म-मरण रहित होने की चीज कोई पूरी भिन्न है। अभी तो लोग धर्म के नामपर कुछ न कुछ पांच पच्चीस लाख खर्चे (तो) हो गया धर्म ! धूल में भी धर्म नहीं, तुम लाख नहीं करोड़... १ करोड़ दो ना। आहाहा ! कैम्प में (बढ़वान कैम्प में) गये थे ना ? तुम्हारे जमाई के पास, वहाँ रुपये दिये थे ना उन्होंने चिमन भाई वह दामनगरवाले, चिमनभाई मालूम है ना ? आये थे ना, अभी आये थे। वहाँ गये थे, आये थे घर से बहिन थी, लडकी (भी)। हमारे सामने नरियल रखा था, और ऐसे जहाँ दो पांच लाख खर्चे करें अर्थात समझें कि धर्म हो गया। धूल में नहीं बापू ! आहाहा ! एक अभी मद्रास गये थे, वहाँ खून की जांच कराई भी है। मद्रास में एक बड़ा अस्पताल है, उसमें एक नानालाल भट्ट है बड़े गृहस्थ, सरल स्वभावी, उन्हें ऐसी खबर लगी कि महाराज अस्पताल में खून जांच को जानेवाले हैं, यह थोड़ा अभी १५ दिन में लेते है (टेस्ट के लिये)। इसलिये वह स्वयं साथ में आये, बिचारे सरलस्वभावी है, छह लाख रुपया उन्होंने स्वयं दिये हैं। मद्रास की होस्पीटल में छह लाख रुपया दिये हैं। अकेले स्वयं नानालाल भट्ट नाम के हैं। उन्हें यह खबर लगी कि महराज हमारी अस्पताल में खून जांच करने को आनेवाले हैं। अतः हमारे साथ आये, हर पंद्रह दिन में खून लेते हैं, कुछ जांच करते हैं, शंका है डॉक्टरों को खून में यहाँ (तो) कुछ दिखता नहीं, बहुत-बहुत डॉक्टर हैं (उनमें) से बड़ा डॉक्टर है वह पारसी एक बड़ा क्या नाम ? भरुचा डॉक्टर, भरुचा डॉक्टर बड़ा डॉक्टर है वह आया, आये थे। आये थे देखने के लिये। बापू ! यहाँ होगा शरीर में धूल में कुछ, हमारे आत्मा में कुछ नहीं। आहाहा ! शरीर में तुम्हें लगता हो तो लगे

भले। इन लोगों को - ऐसा लगे कि पांच दश लाख रुपया दें अर्थात, भट्ट ने छ लाख रुपया दिया, लोग जाने (बड़ा मानें) बापू ! पैसा तुम्हारी चीज नहीं पैसा तो जड़ है, अजीव है और तुम जीव हो, जीव की चीज अजीव हो सके नहीं, इसलिये अजीव (पैसा) हमने दिया, यह अहंकार है। आहाहा !

पर के प्रति अहंकार और अंदर राग हो उसका भी अहंकार दया दान का राग वह भी विकल्पराग है। उसका अहंकार, यह मेरा है उसे यहाँ मम् कहते हैं। मम् को अहंकाररूपी पाप कहते हैं। वह जो गले वह गलाये मं.....ग.....ल..... वह आत्मा के आनंद का आश्रय करके उस अहंकार को गलाये उसे मंगल कहते हैं, उस मांगलीक की यहाँ बात है। पण्डितजी ! है ?

`अथ' शब्द मंगल के अर्थ को दिखाता है `ग्रंथ के आदि में प्रारंभ करते हुए, सर्व सिद्धों को' परमात्मा हुये जो अनंत सिद्ध। संसाररूप विकृत दशा का नाश करके और अविकृतदशा पूर्णानंद की दशा प्रगट करके ऐसे अनंत सर्व सिद्धों को `भाव-द्रव्य स्तुति से'... सूक्ष्मबात है थोड़ी अभी... क्या कहते हैं ? पूरण परमात्मा हुये सिद्ध और हमें भी - ऐसा होना है। परंतु जो हुये, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, किस प्रकार ? नमस्कार के दो प्रकार !

(१) भाव (२) द्रव्य

दोनों शब्दों में... सूक्ष्म बात है। भाव द्रव्य स्तुति अर्थात ? भगवान पूर्णानंद स्वरूप स्वयं आराधक है, सेवन करने लायक है, उसको सेवन करनेवाला भी मैं, ऐसी निर्विकल्प दृष्टि की सेवन, निर्विकल्प शांति से, आत्मा का मंगलिक करे, उसे भाव स्तुति कहा जाता है। फिरसे। आत्मा अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप प्रभु, उसे पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, निर्विकल्प वीतरागी दशा से स्वरूप की सेवा करे, त्रिकाल स्वरूप में एकाग्र हो, उसे भाव स्तुति, भाव स्तुति कहा जाता है। शब्द अन्य जाति के है ? `भाव' शब्द है ना ? सब सिद्धों को अनंत परमात्माओं को भाव और द्रव्य स्तुति से भाव अर्थात यह कि ***मैं स्वयं परमात्मस्वरूप ही हूँ और मेरी निर्मल पर्याय द्वारा मैं परमात्म स्वरूप का आदर करता हूँ। उसका नाम भाव स्तुति कहा जाता है,*** जिसमें राग नहीं, आहाहा... ऐसी कहां फुरसत मिले, फुरसत ही कहाँ है। निवृत्ति लेने की, संसार के पाप कर्मों से दो पांच दश हजार का वेतन हो, वहाँ तो जाने कि, ओ हो हो, बढ़ गये, धूल में भी बढ़े नहीं, धूल में नहीं अर्थात क्या ? वहाँ पुण्य भी नहीं, धर्म तो नहीं परंतु पुण्य भी नहीं। आहाहा !

यहाँ कहते हैं... अनंत परमात्मा हुये उनको मैं शास्त्र की शुरूआत करते हुये (कहता हूँ), मैं भी परमात्मा होने की अभिलाषावाला जीव हूँ, साधक हूँ, आत्मा के

आनंद के अनुभव में आया हूँ, परंतु हमारी अभी पूर्ण दशा नहीं, इसलिये पूर्ण दशा प्राप्त जीवों को, अनंत जीवों को भाव से नमस्कार करता हूँ। भाव से नमस्कार की परिभाषा यह कि स्वयं शुद्ध आनंद है, स्वयं सेवन करने लायक है स्वयं आराधक है एवं स्वयं आराध्य है। आराध्य अर्थात् सेवन करने लायक और आराधक सेवन करनेवाला... आराधक सेवा करनेवाला, आराध्य सेवा करने लायक। आहाहा ! मैं स्वयं आराध्य और आराधक हूँ। ***मैं आराधक और परमात्मा मुझे आराध्य, वह तो द्रव्य नमस्कार में जाता है, विकल्प में जाता है।*** सूक्ष्मबात है भाई ! आहाहा ! यह तो अगम्यगम की बातें है। भाव नमस्कार... पण्डितजी ! आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद, उसे मैं ध्येय में लेकर और वर्तमान मेरी ध्यान की दशा में उसे ध्येय बनाकर और उसकी सेवा करूँ, उसका नाम भाव स्तुति कहा जाता है, जिसमें परमात्मा भी नहीं आवे, जिसमें विकल्प न आवें, विकल्प अर्थात् राग। आहाहा !

मैं शुद्ध चैतन्यघन पूर्णानंद वस्तु हूँ ना। वस्तु है ना। अस्ति है ना ! मौजूदगी है ना। मौजूद वस्तु है ना ! और जो वस्तु में अनंत अनंत जानने में आता है। वह जाननेवाला अनंत है। ***क्योंकि जिसमें अनंतपना जानने में आता है निश्चय से वास्तव में तो (ज्ञेय) जानने में नहीं आते, परंतु वह जाननेवाले की दशा का अनंतपना जानने में आता है, यह जाननेवाले की पर्याय ही जानने में आती है।*** आहाहाहा ! यह पिलास्टिक नहीं, परंतु पिलास्टिक संबंधी जो यहां ज्ञान है, स्वका ज्ञान और परका ज्ञान, वह ज्ञान यहाँ जानने में आता है। इसमें (ज्ञानमें) यह (पिलास्टिक) जानने में आता - ऐसा कहना व्यवहार है। शेष यथार्थ में तो अपने ज्ञान की स्वपर प्रकाशक पर्याय जानने में आती है। सूक्ष्म बात है प्रभु ! आहाहा ! यह लौजिक ही अलग जाति का है प्रभु, यह तत्त्व ही अलग जाति का है।

यहाँ यह कहते हैं, मैं भाव से ही स्तुति करता हूँ। फिर द्रव्य, द्रव्य आया, अब द्रव्य से अर्थात ? अनंत परमात्मा प्रति मेरे शुभ राग विकल्प उत्पन्न होते हैं इसलिये नमस्कार करता हूँ, यह द्रव्य नमस्कार है। पण्डितजी ! कुछ समझ में आता है ?

अंदर का आत्मा... पूर्ण इदम् पूर्ण स्वरूप में प्रभु विराजमान है, उनकी वर्तमानदशा, निर्मल निर्विकारी दशा द्वारा उसमें एकाकार होना, जिसमें राग का संबंध नहीं और जिसमें निर्विकल्पराग बिना की शांति और समाधि उसको यहाँ 'भाव नमस्कार' कहते हैं। आहाहा ! और अब जो अनंत परमात्मा हुये उनके ऊपर मेरा लक्ष्य जाता है, वह अंदर में लक्ष्य में था, इसलिये वह मैं अपने आत्मा की सेवा करता, (हुँ) आराध्य भी मैं और आराधक भी मैं। अब विकल्प उठा है, शुभ राग, तो आराधक मैं और

आराध्य परमात्मा, सिद्ध भगवान सेवन करने लायक हैं, यह शुभ राग है। यह किस जाति की बातें... बापू मार्ग - ऐसा है यह धर्म की दशा और धर्म का कोई प्रकार - ऐसा अपूर्व है बापू... अरेरे ! उनको हाथ में तो आया नहीं परंतु उन्हें सुनने भी नहीं मिलता। ***- ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें भव के अभाव की बात सुनने में न मिले वह भव किस काम का ?***

चाहे दश हजार का वेतन और पचास हजार का वेतन वह धूल का वेतन, अपने रामजी भाई के लड़के को आठ हजार का वेतन है ना ? सुमन भाई पहले `- ऐसो' में थे। (जिसका चिन्ह) उड़ता हुआ घोड़ा पहले `- ऐसो' कम्पनी में थे वहाँ से निकल गये। अब यह जगमोहनलाल है, जामनगर के श्वेतांम्बर, देरावासी, साड़े तीन करोड़ की आमदनी है साल की, यहाँ आ गये हैं (वह)। वहाँ आये थे, अभी खून जांच करने गये थे मद्रास (वहाँ आये थे) वहाँ बिचारे डॉक्टर ने उनका बहुत आदर किया। उन डॉक्टर ने !

मद्रास के गर्वनर हैं अपने यहाँ प्रभुदास भाई पटवारी। में प्लेन से उतरा तब उन्हें खबर मिली की महाराज आये हैं। अतः मेरी मोटर के पास आये, `महाराज ! हमारे गर्वनर होल में आना पड़ेगा, मुझे आपका स्वागत करना है। पटवारी स्वयं, फिर तो व्याख्यान में स्वयं आये। यह डॉक्टर है ना पटवारी भावनगर का उनका भाई, उनका भाई है, व्याख्यान में आये। बाईस मिनट सुना, उनको काम बहुत (था) व्याख्यान बाईस मिनट सुना, परंतु महराज हमारे गर्वनर होल में पधारना पड़ेगा आपको, बाद में गये, वहाँ आधा घण्टे रहे थे। बाहर है बड़ा राजमहल उसको गर्वनर (हाउस) कहते, अपनी हिन्दी भाषा में राज्यपाल कहलाते हैं, परंतु बहुत सीधे आदमी। नरम है नरम, अंदर बहुत विनंती करी, हमारे होल में पधारना होगा, लोगों को थोड़ा पता चले कि महाराज आये थे यहाँ गर्वनर होल में। उसमें बड़ा जंगल है, आसपास तेरहसौ तो हिरण हैं, आसपास जगह बड़ी। खरगोस है, लोमडी है, राजमहल बड़ा है, सब है। परंतु हमने कहा - इस तत्त्व को समझो बापा ! इस बिना सभी धूल धाणी और हवा पानी (व्यर्थ) है।

सीधे सरल हैं, परंतु समय मिले नहीं, समय लम्बा। आहा ! यहाँ यह कहते हैं कि चाहे जितनी बड़ी पदवी हो और चाहे जितने करोड़ों अरबों रुपये हो, यह कोई सुखी नहीं, वह तो दुःखी हैं, बिचारे ! क्योंकि परपदार्थ पर उनका लक्ष्य जाता है, इसलिये राग होता है और राग होता है इसलिये दुःख होता है। स्व का आत्मा का आश्रय करें तब वहाँ उन्हें आनंद है और वहाँ सुख है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं, मैं मेरे आत्मा को नमस्कार करता हूँ भाव (स्तुति) आहाहाहा !

- ऐसा कह कर अपनी स्थिति भी बतायी है। मैं किस भूमिका मैं हूँ। आत्मा के आराधन की भूमिका में हूँ, आचार्य - ऐसा कहते हैं, आत्मा क्या है यह मुझे अनुभव हो गया है। अब अल्प काल में हमें परमात्मा बनने का (स्व)काल है। इसलिए एक तो मैं अपने आत्मा का सेवन करता हूँ, आनंद के नाथ में मेरी एकाग्रता है यह हमारा भाव नमस्कार है, भाव स्तुति है, और जब इसमें मैं रह नहीं सकता, तब जो परमात्मा हो गये, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। तब वह शुभराग है, पुण्य है धर्म नहीं। आहाहा ! मेरा आत्मा (ही) आराधक और आराध्य, ऐसी जो निर्विकल्प समाधि अंदर होना, वह भाव स्तुति, वह धर्म और परमात्म (पद को) पाये हुए को नमस्कार करना, वह शुभ विकल्प और राग, वह पुण्य, धर्म नहीं (श्रोता :- धर्म का कारण तो है ना) बिलकुल नहीं। स्पष्टीकरण कराते है ! वकील है न इसलिये ? क्योंकि राग बिलकुल कारण हो ही नहीं पूर्ण सकता।

भगवान आत्मा सच्चिदानंद, निर्मलानंद का नाथ, पूर्ण पूर्ण पूर्ण पूर्ण इदम, पूर्ण शक्ति का सागर वह तो सुख का समुद्र है। भाई तुम्हें मालूम नहीं। आहाहा ! वह अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र है... कैसे स्वीकार हो ? सुबह जब दो बीड़ी पिये तब दिशा उतरे पायखाना भाई साहब को, ऐसे तो कुलक्षण, अब उन्हें - ऐसा आत्मा ! बापू सब मालूम है। दुनियाँ की तो सभी खबर है ना ! यहाँ घाटकोपर में ८८ वर्ष हुये (जन्म जयन्ती थी) ८९ वैशाख सुद दूज, ८९ पूरे होगये शरीर को, हाँ आत्मा को वर्ष नहीं, आत्मा तो अनादि अनंत है, इतने (समय) में बहुत अधिक देखा। बहुत देखा और बहुत जाना, ८९ वर्ष शरीर को नव्वे में एक कम यह भी जन्म की अपेक्षा, शेष तो माता के पेट में सवानौ महीना रहें वह (आयु) यहीं की है, वह गिनो तो अब एक डेढ़ महीना रहा ८९ पूरा होने में सवानौ महीना इसी भव के हैं ना ? आयुष्य यहीं का है ना ? माता के पेट में आये, परंतु लोग तो जन्म से गिनते हैं कब आये वह नहीं गिनते। आहाहाहा ! अरेरे ! ऐसे अवतार अनंत किये हैं। प्रभु !

यहाँ तो कहते हैं कि हमें अब अवतार करना नहीं - ऐसा जो मेरा आत्मा है उसे हमने पहचाना, हमने आराधा, हमने सेवा की है, हमने भाव स्तुति की है, अपने स्वरूप की। आहाहा ! परंतु अभी मैं अल्पज्ञ हूँ, पूर्ण वीतराग हुआ नहीं इसलिये मुझे (जो) परमात्मा हुये उनके प्रति मुझे बहुमान का राग (रूप) विकल्प आता है। यह राग शुभराग हैं उसे द्रव्य स्तुति कहते हैं और निर्विकल्प समाधि अन्दर (की) शांति, उसे भाव स्तुति कहा जाता है। पण्डितजी ! ऐसी बातें है। संस्कृत में है सभी संस्कृत में है ना ? जयसेन आचार्य की टीका, उसमें सभी है। सहारनपुर के पण्डित हैं। सहारनपुर है ना ?

भाव द्रव्य स्तुति से... क्या कहते हैं अब `अपने आत्मा में और पर के आत्मा में स्थापित करके' बापू ! यह कहानी नहीं, यह कहीं कथा नहीं, यह तो आत्म-कथा है। कहते हैं कि मैं एक आत्मा पूर्णानंद का नाथ... वह मुझे अनुभव में आया, इसलिये अपने अनुभव से उसका सेवन करता हूँ। निर्विकल्प शांति है वह मेरी भाव स्तुति है। परंतु जब उसमें मैं (ज्यादा) रह सकता नहीं क्योंकि अल्पज्ञ हूँ पूर्ण सर्वज्ञ हुआ नहीं, इसलिये पूर्ण परमात्मा हुये उनको मैं शुभ विकल्प नाम राग से नमस्कार करता हूँ। यह शुभ राग व्यवहार नमस्कार है। यह द्रव्य नमस्कार और अंदर निर्विकल्प शांति है वह भाव स्तुति है। अरे ! - ऐसा पढ़ने की कहाँ फुरसत हो। ४१५ तो गाथायें है और साड़े तीन हजार (श्लोक प्रमाण) इतनी तो संस्कृतटीका है, साड़े तीन हजार श्लोक की, आत्मख्याति नाम है। उस टीका का नाम आत्मख्याति। आत्मप्रसिद्धि, आत्मा कैसा है उसकी प्रसिद्धि। ख्याति अर्थात प्रसिद्धि !!

यहाँ कहते हैं कि अपनी आत्मा में; आहाहा ! स्वयं के आत्मा में भी मैं भाव-स्तुति (रूप) नमस्कार करता हूँ और विकल्प आया है व्यवहार से भी परमात्मा को नमस्कार करता हूँ। ऐसे सिद्ध भगवान को (जो) पूर्ण परमात्मदशा को प्राप्त हुए, उन्हें अपने आत्मा में स्थापित करता हूँ। हमारी वर्तमान दशा है, उसमें अनंत परमात्माओं का सत्कार करता हूँ, अर्थात कि स्थापना करता हूँ। आहाहा ! प्रभु अनंत परमात्मा जो सिद्ध हो गये, वह हमारी पर्याय में आओ अर्थात बसो ! अर्थात इतने अनंत परमात्मा अनंत सर्वज्ञ हुये, ***उन सभी को अपनी पर्याय में सम्मान करता (हूँ), उसका अर्थ यह हो गया कि हमारी दृष्टि द्रव्य ऊपर ढल गई है त्रिकाल ऊपर ढल गई है। आहाहाहाहा !***

यह तो थोड़ी बहुत सूक्ष्मबात है बापू ! यह कोई कहानी नहीं ! कहीं यह किस्सा नहीं। यह तो अनंत काल के जन्म मरण का नाश करने की भाव (रूप) दशा है, शेष तो सभी मिला धूल (पैसा) अनंतबार। कहते हैं कि मेरी आत्मा में भाव स्तुति और द्रव्य स्तुति से और दूसरे के आत्मा में... क्या कहते हैं ? इन श्रोता के आत्मा में। - ऐसा कहते हैं - ऐसे श्रोताओं को मैं सुनाऊंगा - ऐसा कहते हैं। अपने और पर के आत्मा में स्थापित करके अनंत सिद्धों को... जो अनंत सिद्ध है, ध्रुव, अचल और अनुपम अर्थ हो गया। वह अभी तो आयेगा फिर से। अपनी आत्मा में स्थापित करता हूँ। जब अपने को किसी गाम में बाहर जाना हो, किसी दूसरे गांव में, तब क्या करते हैं, दो चार घर दूर तक जाकर वापस आते वह वार-कवार कहलाता। बाद में जब जाने का दिन आता है तब सामान लेकर चले जाते हैं। इसीप्रकार यहाँ कहते हैं, कि मैं मेरे आत्मा में भाव नमस्कार की सामग्री रखता

हूँ। अब मुझे पूरणता प्राप्त करना है, वह पूर्ण होगी यह हमारी पूर्ण दशा और उसके साथ विकल्प है वह राग है, यह पूर्णता प्रति हमारा सम्मान है। आहाहा ! समझ में आया ?

सामग्री ले जाकर वापस आते हैं और बाद में (समय आनेपर) लेकर चले जाते हैं, फिर उस दिन बदलने की आवश्यकता नहीं रहती उसे। आहाहा ! इसप्रकार हमारे आत्मा में प्रभु आनंद का नाथ है, उसमें, मेरे आत्मा में मैं सिद्धों को स्थापित करता हूँ, अनंत परमात्मा हो गये, उनका मैं अपनी पर्याय (दशा) में स्वीकार करता हूँ। अपनी पर्याय में सत्कार करता हूँ। आहाहाहाहा ! इस प्रकार, अनंत परमात्माओं का विश्वास जिसे हो और जिसे परमात्मा होने की जिज्ञासा है - ऐसे श्रोताओं के आत्मा में भी मैं सर्व सिद्धों को स्थापित करता हूँ - ऐसा कहते हैं। बाद में मैं तुम्हें सुनाऊंगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

यह क्या कहा ? (तुम भविष्य के सिद्ध हो - ऐसा मानकर सुनना) सिद्ध स्वरूपी ही तुम्हारा स्वभाव है और अल्प काल में तुम्हें सिद्ध होना हो तो सुनो, और सुननेवालों से भी कहते हैं कि अनंत सिद्धों को मैं तुम्हारी पर्याय में स्थापन करता हूँ, प्रतिष्ठित करता हूँ। आहाहाहा ! अभी तक अनंत अनंत सिद्ध हो गये, अनंतकालमें। अनंतकाल में, किस समय परमात्मा नहीं हुये ? ऐसे अनंत हो गये हैं। एसे अनंत परमात्माओंको मेरी आत्मा में स्थापित करता हूँ, परंतु श्रोताओंको - ऐसा कहते हैं पर के, है ना ? पर के आत्मा में स्थापित करके आहाहा ! इन श्रोताओं में अनंत सिद्धों को जहाँ पर्याय में स्थापित किया है और वह जब स्वीकार करता है, तब वह सुनने की पात्रतावाला हो जाता है। आहाहा ! सूक्ष्मबात है बापू ! यह लौजिक दूसरी जाति का है !

`नि' धातु है ना `न्याय' में, न्याय में `नि' धातु है। यह लोग सरकार न्याय करते हैं वह अलग बात है... परंतु यह तो सर्वज्ञ की... `नि' धातु अर्थात `नि' ले जाना, जैसा स्वरूप है उस तरफ ज्ञान को खीच कर ले जाना उसका नाम न्याय। नि धातु है, न्यायमें नि धातु है। जैसा स्वरूप है उसमे ज्ञानको ले जाना, पीछे पीछे ले जाना उसका नाम न्याय ! इस न्याय से यहाँ मेरी आत्मामे भी अनंतसिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहाहा ! तुम पामर जैसा अपने को मानते हो, श्रोता को कहते हैं, परंतु तुम्हारी पर्याय में अनंत सिद्धों को महेमान (बनाकर) स्थापित करता हूँ। आहाहाहा !

इसीप्रकार अनंत सिद्धों को पर्याय में रखकर, मैं कहूँगा वह बात सुनो। मैं आत्मा की बात कहूँगा, वह सुनो। यह जगत से भिन्न दूसरी जाति की बातें चलती हैं। आहाहा ! है ? दूसरे के आत्मा में स्थापित करके, `यह समय नाम का प्राभृत,' यह समय नामक शास्त्र, समयसार, शास्त्र, भाव-वचन और द्रव्य-वचन। क्या कहते हैं यह ?

अंदर में भाव वचन अर्थात ज्ञान की दशा का विकास हुआ, उससे मैं कहूँगा और द्रव्य वचन अर्थात विकल्प उठा है वाणी आदि का, उससे कहूँगा। आहाहा ! भाववचन अर्थात यह वाणी नहीं परंतु अंदर में जो यह ज्ञान की विकास (रूप) शक्ति है, ज्ञान की शक्ति का विकास पर्याय में प्रगट है, उससे मैं कहूँगा उसे भाव वचन कहा जाता है। यह ज्ञान के विकास की जो दशा है, उससे मैं कहूँगा, यह भाव वचन कहा जाता है। ... और वाणी द्वारा और विकल्प द्वारा कहेंगे वह द्रव्य वचन है। पहले भाव-स्तुति और द्रव्य-स्तुति थी, अब यहाँ भाव-वचन और द्रव्य-वचन दो आये। दोनों में यह है। आहाहा ! हमारी ज्ञान की दशा में हमें जो विकास वर्तता है उससे मैं कहूँगा। कहनेवाली वाणी तो जड़ है, परंतु उसमें जो ज्ञान का विकास है, वह निमित्तमात्र है और जो वाणी निकलेगी वह द्रव्य वाणी है, यह वाणी तो जड़ है। आहाहा ! यह वाणी तो जड़ है। यह कोई आत्मा नहीं। यह द्रव्य-वाणी से कहूँगा और भाव-वाणी से कहूँगा। आहाहा !

यह तो अभी मंगलाचरण की शुरूआत है। उपोद्घात करते हैं। पहली गाथा है। आज श्रुतपंचमी है जेठ सुद पांचम। षट्खण्डागम की रचना आज हुयी थी अंकलेश्वर(में)। आहाहा ! अपनी यह १९ वीं बार शुरूआत है। एक-एक शब्द का अर्थ अठारह बार तो हो गया है, यह उन्नीसवीं वार चलता है। भाई तत्त्व सूक्ष्मवस्तु है। आत्मा उसका जो ज्ञान, आत्म-ज्ञान यह चीज बहुत सूक्ष्म है। आहाहा !

डॉक्टर ! जूनागढ़ नरसींह मेहता `**ज्यां लगी आत्म तत्त्व चीन्हों नहीं त्याँ लगी साधना सर्व झूठी**' यह आत्मा - ऐसा, परमात्मा ने कहा - ऐसा जो उसका स्वरूप; जबतक चीन्हों नहि यानी पहचाना नहीं अर्थात जाना नहीं, तबतक तुम्हारे व्रत और भक्ति, तप और दान सब एक अंक बिना के शून्य हैं। आहाहाहा ! पाप की तो बात ही क्या करनी ? यह कमाना, भोग, विषय और नोकरी तथा इसमें लेना-देना यह सभी पूरा पाप है। २२-२३ घण्टे में यदि एकाद घण्टा मिले कदाचित सुनने को तो भी उसमें कुछ शुभ राग हो, आहाहा ! यह भी बंधन का कारण है। समझ में आया ?

यहाँ द्रव्य और भाव-वचन से परिभाषण प्रारंभ करते हैं। भाषा तो देखो, हमारा जो ज्ञान का विकास है उससे मैं आत्मा की बात करूंगा और विकल्प से अथवा वाणी से करूंगा, प्रारंभ करता हूँ। शुरू करते-करते कहाँ पूरा होगा, वह होगा तब जान लेना। आहाहा ! शुरू करता हूँ - ऐसा लिखा है ना ? परिभाषण आहाहा ! है ? परिभाषण अर्थात समस्त प्रकार से पूरा भाव ज्ञान और वाणी में वह पूरणपना आया। उसका नाम परिभाषण `परि' उपसर्ग है। (अर्थात) समस्त प्रकार से उसका

कथन प्रारंभ करता हूँ। अब प्रारंभ करता हूँ, आहाहाहाहा ! इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मुनि हैं नग्न दिगम्बर संत, जंगल में बसते हैं, दो हजार वर्ष हुये संवत् ४९ में जंगल में रहते थे उन (गाथाओं) से श्लोक संस्कृत में बनाये हैं। आहाहा ! और यह टीका है वह उनके एक हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य मुनि हुये, उन्होंने बनाई है।

इस नये कलश का यह नाम दिया है भाई, `अध्यात्म अमृत कलश' (पं.) जगमोहन लालजी ने नया छापा है न ? राजमलजी की टीका, जगमोहनलालजीने उसका नाम `अध्यात्म अमृत कलश' वह अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं ना ? इसलिये पुस्तक का नाम `अध्यात्म अमृत कलश' - ऐसा नाम रखा है। यहाँ नहीं, वहाँ आया है, अभी भेंट आया है ना ?

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वह सिद्धभगवान कैसे हैं, आहाहा ! परमात्मारूप हुई दशा अस्तिरूप से। अभी तो श्रद्धा का भरोसा नहीं ? आहाहा ! कि जैसे अनंत जीव परिभ्रमण करते हैं उसीप्रकार अनंत जीव पूरण सिद्धपद को प्राप्त हुये हैं। क्योंकि जब मैं शुरूआत करूंगा पूरा होने की, तो अल्पकाल में हमारी पूरणता होगी, तो जिसने शुरूआत की है उसे अल्पकाल में (पूर्णता) हो गई है। ऐसे अनंत जीव हो गये हैं। लौजिक न्याय से (सिद्ध) है। आहाहा ! समझ में आया ? यह सिद्ध भगवान, सिद्धपने के कारण, सिद्ध परमात्मदशा, अशरीरी... जिनको शरीर नहीं है, वाणी नहीं, विकल्प नहीं, राग नहीं पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! ऐसे अनंत परमात्मा बिराजते हैं, जिन्हें `णमो सिद्धाणं' में बताते हैं। पाँच नवकार के पद हैं और नमो अरिहंताणं `अरि' नाम दुश्मन। राग और अज्ञान यह दुश्मन है उसे `हंत' नाम नष्ट किया-और जिन्होंने पूरण आनंद प्रगट किया उन्हें अरहंत कहते हैं परंतु उन्हें शरीर होता है, उन्हें वाणी होती है, शरीर और वाणी से रहित को सिद्ध भगवान कहते हैं, **नमो सिद्धाणं** दूसरे पद में यह पांचों पदों के शब्द का अर्थ है। कोई यों ही नहीं। मनगढ़न्त नहीं (अंधश्रद्धा नहीं)। उसके भाव, शब्दों के अर्थ गहरे हैं। कांतिभाई ! **णमो अरिहंताणं**, **णमो सिद्धाणम्**, **णमो आयरियाणम्**, परन्तु इनका भाव क्या है ? पक्ष में पड़े हों उन्हें कुछ समझ नहीं आता। आहाहा !

ऐसे अनंत सिद्धों को... आहाहा ! सिद्धपने के कारण साध्य जो आत्मा, क्या कहा ? आत्मा साध्य है और आत्मा को (ही) साधना करनी है ना ? जिनके साध्य में सिद्ध (भगवान) प्रतिछंद, प्रतिछंद अर्थात **हे भगवान** (- ऐसा कहने पर) तब सामने से आवाज (प्रतिध्वनि) आती है, **हे भगवान** ! यह प्रतिछंद अर्थात सामने से प्रतिध्वनि आती है प्रतिघात सामने से आवे ना ? हे भगवान। तुम सिद्ध हो, तो सामने से

प्रतिध्वनि आयी सामने से पलटकर, `हे आत्मा तुम सिद्ध हो'। समझ में आया ? आहाहा ! है ? वह प्रतिछंद के स्थानपर है, सामने से ध्वनि उठी है। जैसे परमात्मा को तुम कहते हो कि आप पूर्ण हैं, पूर्णानंद, हो तो ऐसी ही प्रतिध्वनि तुम्हारे लिये वापस आती है। `तुम भी पूरण हो'। पूरणानंद हो। आहाहा ! - ऐसा है। इसमें आदमी को कहाँ फुरसत है ? आत्मा साध्य है और यह (सिद्ध) आत्मा उसके प्रतिछंद के स्थान में है। सिद्ध प्रतिछंद के स्थान पर है। **जिनके स्वरूप का संसारी भव्य जीव चिंतन करके, `पूरण परमात्मपद को प्राप्त हुये'** उनके स्वरूप का संसारी जीव चिंतन करके। आहाहा ! उन जैसा होना चाहते हैं, जिसको अब संसार दशा में रहना नहीं। आहाहाहा ! ऐसे प्राणी को सिद्ध भगवान आत्मा को साधने में प्रतिछंद हैं। उनका ध्यान करें, विचार करें कि ऐसे सिद्ध, ऐसे परमात्मा, इन जैसा ही मैं हूँ। आहाहा ! स्वरूप का... संसारी भव्य जीवों... दोनों बात सिद्ध की हैं, अनंत सिद्ध, सिद्ध किये, अनंत काल में परमात्मदशा को प्राप्त, और संसारी भव्य जीव भी अनंत हैं, भव्य अर्थात मोक्ष जाने लायक ऐसे जीव, सिद्ध भगवान का चिंतन करके... आहाहा ! उनके समान अपने स्वरूप को ध्यान कर, सिद्ध (का) जैसा परमात्मा (स्वरूप है) वैसा हमारा स्वरूप है - ऐसा ध्यान करके आहाहा ! है ? उन जैसे हो जाते हैं ?

सिद्धों का ध्यान करके सिद्ध जैसे हो जाते हैं। इसलिये सिद्धों का ध्यान करके सिद्धों की स्थापना करते हैं। विशेष कहेंगे... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)